वर्ण व्यवस्था को शरीर शास्त्र और वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे समझें

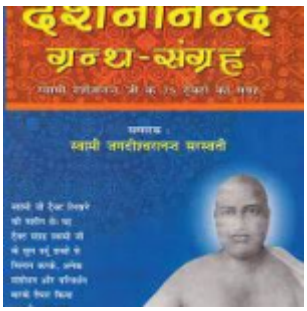

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रो अजायत॥
-यजुः० ३१।११

प्यारे पाठकगण ! इससे पहले वेदमन्त्र में यह प्रश्न किया गया था कि मनुष्य-जाति का मुख क्या है? बाहू क्या है? ऊरू क्या है? और पाँव क्या है? अर्थात् इस बात को अलङ्कार से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया था कि जिस प्रकार संसार में शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्ग हैं, किन्तु सब मिलकर एक पुरुष कहलाता है, यद्यपि भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न काम करती हैं, परन्तु सबका लाभ एक ही पुरुष को पहुँचता है, और जिस प्रकार एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय के अधीन है, इसी प्रकार इस मनुष्य-जाति में विभिन्न प्रकार के वर्ण और आश्रम होने पर भी ये सब एक हैं। यद्यपि प्रत्येक वर्ण और आश्रम के गुण और कर्म सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी उनका फल सम्पूर्ण मनुष्यजाति के लिए होता है और प्रत्येक वर्ण=आश्रम का मनुष्य दूसरे के आश्रित है। जिस प्रकार एक इन्द्रिय के निकम्मी हो जाने से शरीर की दशा में अन्तर आना आरम्भ हो जाता है, उसी प्रकार किसी भी वर्ण अथवा आश्रम में निर्बलता आ जाने से संसार का कारोबार गड़बड़ हो जाता है। जिस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय अपने काम के साथ दूसरी इन्द्रियों की सहायता करती है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपना काम करके दूसरों का काम करने में सहायता करनी चाहिए। उदाहरण के रूप में आँख का धर्म रूप देखना है और वह देखती भी है, परन्तु वह पाँव को मार्ग दिखलाती है, हाथ से पकड़नेवाली वस्तु को दिखलाती है। तात्पर्य यह है कि यह मन्त्र मनुष्यों के कामों और सामाजिक काम को ठीक प्रकार बतलानेवाला है।

प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ यह है कि ब्राह्मण इस संसार का मुख है, और क्षत्रिय बाहू है, वैश्य ऊरू अर्थात् जङ्घा है, और शूद्र पाँव है। निष्कर्ष यह है कि मनुष्यजाति के चारों वर्गों को शरीर के चारों अङ्गों की उपमा दी है। बहुत-से लोग यहाँ पर प्रश्न करेंगे कि वर्ण चार ही क्यों बनाये गये? क्या इससे कम या अधिक नहीं हो सकते? परन्तु उनकी यह शङ्का ठीक नहीं, क्योंकि ये वर्ण स्वाभाविक नियमों पर बनाये गये हैं। नियन्ता ने शरीर को चार भागों में ही विभक्त किया है। पहला भाग गर्दन से शिर तक भिन्न दृष्टिगोचर होता है, बाहू से कमर तक सर्वथा पृथक् है, तीसरा कमर से जङ्घा तक है, और चौथा जङ्घा से पाँव तक है। पहले भाग को ब्राह्मण कहा कि ब्राह्मण मनुष्य-जाति को शिर है। नियन्ता ने अपने इस नियम को ऐसा बनाया है कि आश्चर्य होता है।

प्यारे मित्रो ! वस्तुत: यह शिरवाला भाग नीचे के भागों से भौतिक शक्ति में बहुत ही निर्बल है, कारण कि वह सबसे छोटा है। इस उपमा में नियन्ता ने बतलाया है कि जिस तरह यह भाग दूसरे भागों से अपनी रचना-शक्ति में निर्बल है, उसी तरह ब्राह्मण सांसारिक वस्तुओं, धन-सम्पत्ति में शेष वर्षों से न्यून होगा, अर्थात् शेष तीनों वर्गों के मनुष्य अधिक धनी होंगे। तदपि इस भाग में जिस प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के साथ ज्ञान-प्राप्ति के बाह्य साधन विद्यमान हैं, इसी प्रकार ब्राह्मणों में ज्ञान के साधनों का होना आवश्यक है।

अब देख लीजिए कि शिर में चक्ष, अर्थात् आँख, कान, नाक, जीभ, और त्वचा, ज्ञान प्राप्ति के पाँचों साधन उपलब्ध हैं। यह भी बतलाया गया है कि त्वचा जो स्पर्शेन्द्रिय है वह तो सारे शरीर में विद्यमान है, परन्तु विशेष ज्ञान ब्राह्मणों के लिए आवश्यक है। *जिसमें विशेष ज्ञान और धन आदि के प्रति वैराग्य होता है, वह ब्राह्मण कहलाता है।* यहां यह भी बतलाया गया है कि ज्ञानेन्द्रियों में उत्तम कौन-सी है, क्योंकि आँख और कान को ऊँचाई में लगभग बराबर रक्खा है, जिसका अर्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञान और ईश्वर से प्राप्त होनेवाला ज्ञान बराबर है और उसके पश्चात् रस-ज्ञान है।

प्यारे पाठकगण ! यहाँ से आपको यह भी विदित हो जाएगा कि जितनी दूर तक हम ठीक से रूप को देख सकते हैं, लगभग वहीं तक शब्द को भी ठीक सुन सकते हैं, परन्तु गन्धं इतनी दूर से ठीक ज्ञात नहीं होती और रस तो तभी ज्ञात होता है जब वस्तु मुँह में आ पड़ता है। इस विधि से हमें इन्द्रियों की शक्ति का अनुमान हो गया कि सबसे प्रथम हैं आंख और कान, दूसरे नाक, तीसरे जिह्वा । बहुत-से लोग यहाँ पर यह शङ्का करेंगे कि स्पर्शेन्द्रिय को क्यों छोड़ दिया, वह सबसे ऊपर विद्यमान है ? परन्तु मित्रो ! स्पर्श तो सारे शरीर में व्यापक होने से सामान्य हो गया ; इसके ऊपर-नीचे के क्रम का अनुमान ठीक नहीं।

प्यारे पाठकगण ! यहाँ से आपको यह ज्ञात हो गया कि *ब्राह्मण के गुण ज्ञान और वैराग्य हैं। परन्तु कर्म क्या है ? इसका उत्तर भी नियन्ता ने दिया है इस शरीर में कर्मेन्द्रिय कौन-सी है ? वाणी। वाणी का काम क्या है ? जो आँखों से देखा, कानों से सुना और नाक से सँघा हो, उसे बतलाना, अर्थात् ब्राह्मण का काम है कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त हो उसे विवेक की कसौटी पर परखकर वह संसार में उसका उपदेश करे, अर्थात् ब्राह्मण का काम कान से ज्ञान प्राप्त करना और वाणी से पढ़ना और यज्ञ करना-कराना अर्थात् वाणी से मन्त्रों द्वारा क्रिया करनी और दूसरों से करानी है ; जिस गुरु से पढ़ा है उसको गुरु-दक्षिणा देना अर्थात् दान देना और जिसको पढ़ाया है उससे दक्षिणा अर्थात् दान लेना, या जिसने ब्राह्मण के घर में यज्ञ कराया है उसको यज्ञ की दक्षिणा देना अर्थात् दान देना है। पहले चार कर्म अर्थात् पढ़ना-पढ़ाना और यज्ञ करना-कराना तो कर्तव्य कर्म हैं, पिछले दो कर्म उनका फल है।

बाहु को राजा अर्थात् क्षत्रिय कहा गया है। अब आप देखिए कि सारे शरीर में रक्षा का काम कौन करता है ? जब आँख में चोट लग जाए तो उसकी ओषधि कौन करता है ? पाँव में कष्ट हो अथवा चाहे शरीर के और किसी भाग में कष्ट हो, उसकी चिकित्सा करना बाहु का काम है। यह भी बतलाया गया है कि यह भाग भौतिक शक्ति में शेष तीनों से अधिक होगा। बस आप इस भाग की जो गले से कमर तक फैला हुआ है, जाँच कर सकते हैं कि यह सारे भागों से अधिक शक्ति रखता है।

*इसी प्रकार राजा के पास संसार के सब वर्णों से अधिक धन होना आवश्यक है। यह यह भी बतलाया

गया है कि विद्या के पश्चात् बल का दूसरा स्थान सहायता है, अर्थात संसार में पहला स्थान विद्या का है, क्योंकि बाहु इत्यादि आँख की सहायता के बिना काम नहीं कर सकते और आँख बिना बाहु के काम कर सकती है। आँख की रक्षा के लिए तो बाहु का होना आवश्यक है परन्तु उसके काम की सहायता बाहु से कुछ भी नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य यह है कि विद्या की रक्षा के लिए बल की आवश्यकता है और बल को काम में लाने के लिए विद्या की आवश्यकता है। बल विद्या के बिना ठीक प्रकार काम नहीं कर सकता और बल के बिना विद्या की रक्षा नहीं हो सकती, परन्तु स्मरण रहे कि विद्या अपना काम करने के लिए बल के अधीन नहीं, परन्तु बल अपने काम करने के लिए विद्या के आश्रित है। इसलिए प्रथम स्थान विद्या को दिया गया है।

तीसरा भाग ऊरू अर्थात् जङ्घा कहलाता है। उसकी उपमा वैश्य से दी गई है, क्योंकि यह भाग ऊपर और नीचे के दोनों भागों का सन्धि-स्थान है, अर्थात् शूद्र इत्यादि वैश्य की सहायता के लिए हुए। वैश्य की सहायता के बिना क्षत्रिय और ब्राह्मण का निर्वाह नहीं हो सकता। वैश्य की प्रतिष्ठा धन से बतलाई गई है, अर्थात् धन संसार में तीसरे स्थान पर है। विद्या और बल तो धन से प्राप्त हो सकता है, परन्तु धन से विद्या और बल प्राप्त नहीं हो सकते।

हमारे बहुत-से मित्र यह प्रश्न करेंगे कि हम धन से विद्या प्राप्त कर सकते हैं, धन व्यय करके पढ़ लेंगे, परन्तु स्मरण रहे कि बिना पुरुषार्थ और परिश्रम किये धन से विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। जितने परिश्रम से धनवान् विद्या प्राप्त कर सकता है उतने परिश्रम से निर्धन व्यक्ति भी विद्या प्राप्त कर सकता है, अर्थात् विद्या के लिए धन का होना न होना बराबर है ; केवल परिश्रम की आवश्यकता है, परन्तु धन से शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

यहाँ बहुत-से लोग यह शङ्का करेंगे कि धन से अच्छा भोजन मिल सकता है और उससे शक्ति प्राप्त होती है, परन्तु यह बात मिथ्या है, क्योंकि सब धनवान् निर्बल दिखाई देते हैं वरन् ये आरामतलबी- पड़े-पड़े खाना और परिश्रम से जी चुराना इसका कारण भी धन ही दिखलाई पड़ता है, जो निर्बलता का चिह्न है।

प्यारे पाठक! धन को विद्या और बल से नीचे स्थान देने का यह भी कारण है कि विद्या और बल जीवात्मा और शरीर का गुण है, अर्थात् विद्या तो चेतन जीवात्मा का गुण है और बल जीव और शरीर दोनों का संयुक्त गुण है, परन्तु धन इन दोनों से भिन्न एक बाह्य वस्तु है। जितनी देर में धन नष्ट होता है, बल उससे अधिक देर में नष्ट होता है ; विद्या जन्म-जन्मान्तर तक नष्ट नहीं होती। हाँ, विद्या के कारण निर्बल बहुत देर में नष्ट होता है।

चौथा भाग पाँव का है जो पाँव से घुटने तक का है। यह भाग मध्यवर्ती दो भागों से निर्बल है, लेकिन ऊपर के हिस्से से अधिक शक्तिशाली है, जिससे बतलाया गया है कि शूद्र ब्राह्मण से अधिक धनवाला हो सकता है, परन्तु क्षत्रिय-वैश्यों से कम धन रखता है। इसीलिए उसका काम सारे बदन को उठाकर ले चलने के अन्य कुछ भी नहीं होता। नियन्ता ने शूद्र को तीनों वर्गों की सेवा के लिए बनाया है। प्यारे पाठक! यह सेवकसमाज संसार में विद्वानों से अधिक धनी हो सकता है। हमारे बहुत-से मित्र यह शङ्का करेंगे कि यदि सेवा से विद्या की अपेक्षा अधिक धन पैदा होता है तो विद्या सबसे निर्बल वस्तु है।

परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि विद्वान् पुरुष धन की इच्छा कदापि नहीं रखता और न धन के लिए अपने जीवन को भेंट चढ़ा सकता है, क्योंकि उसके विचार में जीवन के सन्मुख धन बहुत ही तुच्छ वस्तु है। वह जानता है कि यदि संसार का बहुत बड़ा सम्राट् अपनी मृत्यु के समय सारा राज्य पाँच मिनट के जीवन के बदले देने का विचार करे तो उसे सारे राज्य के बदले पाँच मिनट जीवन नहीं मिल सकता, फिर वह क्यों अपना बहुमूल्य जीवन धन के बदले खर्च करेगा ? जो जीवन एक साम्राज्य के बदले थोड़े समय के लिए भी नहीं मिल सकता, उसके बड़े अंश को थोड़े धन के लिए खर्च करना बड़ी मुर्खता है। पुराने समय में ब्राह्मण धन से सदैव घृणा करते थे, इसलिए सबसे उत्तम गिने जाते थे।

शास्त्रों में लिखा भी है –
परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥ ऐतरेय उ० ३ ।१४
अर्थात् देवता (विद्वान्) लोग परोक्ष प्रिय होते हैं। परोक्ष उसे कहते हैं जो बाह्य इन्द्रियों से अनुभव न हो। इस संसार में जो तीन पदार्थ हैं उनमें से जीवात्मा और परमात्मा इन्द्रियों से अनुभव नहीं होते, केवल प्राकृतिक पदार्थ ही इन्द्रियों से अनुभव हो सकते हैं। निष्कर्ष रूप में यहाँ यह बतलाया गया है कि विद्वान् लोग आत्मा और परमात्मा से प्रेम करते हैं और प्रकृति से घृणा करते हैं।

यहाँ हमारे मित्र यह शङ्का करेंगे कि वेद-मन्त्र में तो ब्राह्मण शब्द है और इस कथन में देवता शब्द है। ब्राह्मण की देवता से क्या समता ? परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि देवता और ब्राह्मण पर्यायवाची हैं, जैसाकि लिखा है –
विद्वाऽसो हि देवाः॥
अर्थ-विद्वान् ही देवता होते हैं। बहुत-से लोग यहाँ पर शङ्का करते हैं कि विद्वान् शब्द देवता का पर्याय नहीं, किन्तु देवता का गुण है, अर्थात् देवता विद्वान् होते हैं मूर्ख नहीं होते, परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं। महाभाष्य में लिखा है कि देवता शब्द का अर्थ पण्डित है –
किं पुनरर्थस्य तत्त्वं ज्ञातुमर्हन्ति।
देखो महाभाष्य का दूसरा अध्याय
देवा इति दिव्यदृशः, देवा इति इत्यर्थः।
इस पर कैयट लिखते हैं
पतञ्जलि मुनि ने कहा था कि अर्थ के तत्त्व को विद्वान् ही समझ सकते हैं, प्रत्येक मनुष्य की शक्ति नहीं कि वह अर्थ की सत्यता को समझ सके।

उपर्युक्त वर्णन से आपको विदित हो गया होगा कि वेद-मन्त्र चारों वर्गों को गुण और कर्म से भिन्न बतला रहा है और साथ ही विद्या, बल, धन और सेवा के कर्तव्य के क्रम को बतला रहा है। यह भी बतला रहा है कि जिस प्रकार इनमें से एक के भी बिगड़ जाने से शरीर की दशा बिगड़ जाती है, जैसे एक आँख न होने से काणा और दोनों न होने से अन्धा, कान के निकम्मा होने से बहरा, वाणी के निकम्मा होने से पूँगा हो जाता है, इसी प्रकार जिस देश में ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् न हो या वे अपने कर्तव्य को पूरा न करें तो वह देश अन्धा, राँगा, बहरा हुआ गिना जाता है। दूसरे, जिस प्रकार बाँह के निकम्मी हो जाने से मनुष्य टुण्डा हो जाता है और अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकता, इसी प्रकार जिस देश में क्षत्रिय अर्थात् बलवान् सिपाही विद्यमान न हों वह देश भी टुण्डा हो जाता है और अपनी था नहीं कर सकता तथा सदैव गुलामी में जकड़ा रहता है। जिस प्रकार जङ्गा की कमजोरी से मन चलने और व्यवहार करने

में निर्बल हो जाता है, इसी प्रकार जिस देश में वैश्य अर्थात् व्यापारी और किसान न हो, वह देश निकम्मा और निर्बल हो जाता है। जिस प्रकार पाँव बिगर जाने से अथवा निकम्मा हो जाने से मनुष्य लङ्गड़ा-लूला हो जाता है, इसी प्रकार जिस देश में सेवक और शिल्पकार लोग विद्यमान न हों, वह देश भी उन्नति से सर्वथा रहित और सांसारिक शक्तियों से शून्य रहता है।

प्यारे पाठकगण ! *अब आप समझ गये होंगे कि वेदमन्त्र क्या बतलाता है। जो लोग इसकी आज्ञा का पालन नहीं करते वे अवश्य कष्ट में होंगे। चूँकि आजकल भारतवर्ष के चारों वर्षा अपने-अपने कर्मों को छोड़कर जाति और जन्म से हो गये, इसीलिए यह भारतवर्ष सारे दु :खों का घर हो गया है। प्रत्येक वर्ण ने अपनी-अपना कर्म छोड़कर देश को जो हानि पहुँचाई है, उसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। जब तक सारे वर्ण अपने गुण-कर्म वेदमन्त्र के अनुकूल न कर लें, तब तक भारतवर्ष किसी प्रकार उन्नति नहीं कर सकता। चारों वर्णों का अपने गुण कर्मों पर आ जाना उपदेश के बिना असम्भव प्रतीत होता है। जब तक सारे देश में योजनाबद्ध रूप से वैदिक धर्म का उपदेश करके प्रत्येक व्यक्ति को वर्ण के कर्तव्य न सुझाये और समझाये जाएँ और अविद्या के कारण जो कुरीतियाँ या रस्में देश में प्रचलित हैं वे सर्वथा बन्द न हो जाएँ तथा आजकल वर्ण-आश्रम के स्थान पर जो सम्प्रदाय और भिक्षुक-मण्डल चल पड़े हैं, जब तक ये सुधरकर फिर वर्ण-आश्रम की शरण में न आ जाएँ, तब तक भारत गारत ही होता चला जाएगा।

इस समय यदि आप सम्प्रदायों का खण्डन और भिक्षुकों की संख्या कम करने का प्रयत्न करेंगे तो अवश्य एक प्रकार का भारी कोलाहल संसार में फैल जाएगा। जैसा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के उपदेश से सारे संसार में जो एक प्रचार का विचार आरम्भ हुआ था, वह आर्यसमाज के साधारण सभासदों के खण्डन-मण्डन और आचरणों से उलटा हो गया। आप सोचते होंगे कि इसका कारण क्या है कि स्वामीजी के जीवन में आर्यसमाज में प्रेम और प्रीति का प्रचार अधिक था और अब वह कुछ कम हो गया ? यद्यपि बहुत-से भोले भाई इसे समाज के सभासदों की हठधर्मी के मत्थे मढ़ते हैं, परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं। स्वामीजी का जीवन परोपकार का जीवन्त उदाहरण था और वैदिक धर्म का उपदेश भी निरन्तर प्रवहमान था। स्वामीजी के मरते ही धर्म का स्थान राजनीति ने, उपदेश का-स्थान स्कूल और कॉलिज ने, संस्कृत के गौरव के स्थान में अंग्रेजी के गौरव ने स्थान पा लिया, जिससे वह सारा प्रेम कम होने लगा और आर्यधर्म का वह वृक्ष जो महर्षि ने उपदेश के जल से सींचकर तैयार किया था, निर्बल होने लगा और विद्या का काम सब देशों के लिए कम हो गया।

चूँकि नियन्ता ने नियम से एक भाग में ज्ञानेन्द्रियाँ और शेष भागों में कर्मेन्द्रियाँ देकर और सर्वत्र केवल एक त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय देकर यह निश्चित कर दिया है कि सामान्य ज्ञान तो सारे संसार को हो सकता है, परन्तु विशेष ज्ञान सारे संसार को नहीं हो सकता, इसीलिए ज्ञानी का कर्तव्य है कि अज्ञानियों को उपदेश के द्वारा रास्ता दिखलाए, परन्तु आजकल मूर्ख लोग उस उपदेश को तुच्छ समझने लग गये, मानो उनके विचार में ईश्वर की शिक्षा भी अपूर्ण है, केवल उनकी बुद्धि पूर्ण है।
*प्यारे पाठकगण ! आप वेद के लिखित और मौखिक प्रचार से चारों वर्णों के गुण-कर्म सुधारने का प्रयत्न करो।

लेखक- स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

पुस्तक – दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह
प्रस्तुति – 'अवत्सार'